भारतीय समाज में सिनेमा और महिलाएं : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

राजेंद्र वर्मा [1]

[1] **पूर्व सहायक प्रोफेसर (समाजशास्त्र), राजकीय महाविद्यालय देवली कलां, जिला: ब्यावर, राजस्थान.**

ABSTRACT:

सन 1930 के दशक में अपने अस्तित्व की स्थापना करने के पश्चात् भारतीय सिनेमा उद्योग ने दशकों तक प्रदर्शन करते हुए देश के मनोरंजन में सबसे लोकप्रिय स्रोतों में से एक की ख्याति को प्राप्त किया। सिनेमाघरों में बड़ी संख्या में जन मानस के आने और ब्लॉकबस्टर फिल्मों के सफल होने की उपरांत भी समय समय पर रिलीज होने वाली अधिकांश फिल्मों में कुछ न कुछ समानता होती है जिनको यदि देखा जाए तो पुरुषों को ऐसे पात्र के रूप में चित्रित किया जाता है जिसके द्वारा समाज में उनके पुरुषत्व की अभिव्यक्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसके विपरीत महिलाओं की भूमिका हमेशा एक दायरे में दिखाई देती है। परिणामस्वरूप ऑन स्क्रीन और ऑफ स्क्रीन दोनों असमानता ने महिलाओं को एक हाशिए पर रख दिया है। जन मानस के द्वारा सबसे लोकप्रिय स्रोत के रूप में पहचाना जाने वाला सिनेमा जगत भले ही युग की परिवर्तनशीलता को कितनी ही तेजी से अपना रहा हो लेकिन उसके बाद भी भारतीय सिनेमा जगत में महिलाएं कहीं न कहीं आज भी विभिन्न रूढ़ीवादिताओं का शिकार दिखाई देती हैं।

मुख्य रूप से भारतीय सिनेमा में महिलाओं के प्रेम रूप को अत्यधिक दृष्टिगोचर किया जाता है। जिसके कारण उसके सौम्य स्वरूप की व्याख्या ही की गई है। समाज में आज भी महिलाओं की भूमिका जस की तस है। उन्हें आज भी समाज में कमजोर, लाचार, अबला, असहाय और दया का पात्र समझा जाता है। उन्हें अनेक प्रकार के शोषण सहन करने पड़ते हैं। अनेक प्रकार के मिथ्या भ्रम के मध्य इनको घेरा जाता है। यद्यपि भारतीय महिला अपने प्राचीन काल से ही अदम्य शक्ति का पुंज रही है। अतः भारतीय समाज में महिलाओं ने अपने हर कदम पर शक्ति का परचम फहराया है। उन्होंने अपने जीवन में नए प्रतिमान स्थापित किए हैं, नए आयाम उन्हें प्राप्त हुए हैं। लेकिन फिर भी भारतीय समाज और सिनेमा में महिलाओं के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। आज भी महिला का पाश्चात्य बिंब भारतीय बिंब पर हावी दिखाई देता है। यदि सिनेमा ने महिला शक्ति को आकाश का स्पर्श कराया है तो पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण ने उसको जीवन मूल्यों से भी विहीन कर दिया है। भारतीय सिनेमा में महिलाओं का सौंदर्य प्रदर्शन, अंग प्रदर्शन, अपने प्रत्येक अभिनय के लिए धन की ऊंची मांग, प्रतिस्पर्धा आदि विभिन्न प्रकार के प्रपंच देखने को मिलते हैं। जिसने भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका को विभिन्न दृष्टियां प्रदान की हैं। उसके इन विविध रूपों की झलकियां ही इस आलेख के द्वारा प्रस्तुत की जा रही हैं।

KEYWORDS:

भारतीय समाज, सिनेमा, महिलाएं, विश्लेषण, अध्ययन, मूल्य, पश्चिम, आधुनिक।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
12th April 2024	15th April 2024

प्रस्तावना:-

भारतीय समाज में सिनेमा जगत व्यापक धरातल है जो न केवल मनोरंजन का क्षेत्र है बल्कि उद्योग का सबसे बड़ा और प्रभावी रंगमंच है। जहाँ पर दूर दूर से आये व्यक्ति अपने स्वरूप को आकार और प्रकार प्रदान करते हैं। सिनेमा में कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं यह कला के साथ-साथ अत्याधुनिक तकनीक से भी जुडा है यह सब सिनेमा के शुरुआती दिनों में नही था, सिनेमा पहले सफेद और काले पर्दे तक सीमित था वो भी बिना आवाज के दिखाई देतें थे। यह ब्लैक एण्ड व्हाईट का जमाना था। उस समय सिनेमा बेरंग और बेआवाज था। लेकिन जैसे जैसे युग बदला समाज में औद्योगीकरण ने अपने पैर पसारे वैसे वैसे सिनेमा मनोरंजन से उद्योग का स्वरूप लेने लगा और सिनेमा में अत्याधुनिकता ने उसको नया रूप, नयी पहचान, नए प्रतिमान और नई दिशाएं प्रदान कर इसके बाद सिनेमा मनोरंजन का स्थान ना रह कर तीव्रता के साथ धन अर्जित करने का सबसे बड़ा स्थल बन उसमें समय के परिवर्तन के साथ अत्याधुनिक तकनीक ने विशेष बदलाव ला सिनेमा को न केवल आवाज दी बल्कि रंग के साथ थ्री डी रिफ्लेक्शन भी दे यह सब समाज के लिए एक अजूबा था जो कि अपनी पहुँच बढ़ा रहा था। और अब सिनेमा ने समाज में अपने नए रूप के साथ अपना स्थान सर्वोच्च शिखर तक ला खड़ा किया।

सिनेमा की अवधारणा :-

सिनेमा के यथार्थ स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए रामप्रकाश द्विवेदी जी अपनी पुस्तक 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और सिनेमा' के माध्यम से कहते हैं कि "सिनेमा यथार्थ के आभास का माध्यम है। यह आभास मिथ्या होने के बावजूद हमारी ज़िन्दगी का सच होता है उसकी संगति में आकार पाता हुआ। कलाएँ जिंदगी के असीमित विस्तार को, अमूर्तित्व सत्य को हमारे अनुभव के दायरे में आबद्ध करती है; उसे ज़्यादा ठोस, भौतिक और मार्मिक बनाते हुए सिनेमा भी वस्तुतः एक कला ही है, जिसमें विज्ञान और तकनीक की भूमिका अत्यंत गहरी है। इसीलिए, छवि-चित्र ऐसी दुनिया रचते हैं जो आभासिक होते हुए भी वास्तविकता की पहचान का सतत् उद्यम करती है"।

1950 का दशक फिल्मों का सुनहरा काल माना जाता है। उस वक्त में बाजारवाद कम यथार्थ अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाता था। विमल राय, सोहराब मोदी, शांताराम, बी.आर चोपडा, ऋषिकेश मुखर्जी, बासु चटर्जी आदि फिल्मी हस्तियों ने सिनेमा में धडकन का कार्य किया तथा सिनेमा में जान डाल दी थी। यें वो लोग थे जो उस वक्त समाज की परिस्थितियों की पकड कर सामाजिक फिल्में बना रहें थे। धूल का फूल, पाकीजा, धरती के लाल, सिकंदर, पुकार, सुजाता, साहिब बीबी और गुलाम जैसी सुपर डूपर हिट फिल्में लोगों से सीधे जुडी हुई थी। उनकी प्रसिद्धि का प्रमुख कारण इन फ़िल्मों के कथ्य का समाज की सत्यता से जुड़ना था। समाज के वातावरण को अपने अंदर समा लेना था। इस समय सिनेमा जगत समाज की मान्यताओं, जीवन मूल्यों, आदर्शों और नैतिक सत्य की प्रतिष्ठापना करता हुआ प्रतीत होता था। उससे ऐसा लगता था कि, सिनेमा अपनी फिल्मों के माध्यम से समाज के समक्ष एक शिक्षा प्रदान करना चाहता है। कहीं न कहीं उस समय सिनेमा समाज की मान्यताओं को अभिनय के द्वारा प्रस्तुत करता था और मानव को एक मूक शिक्षा प्रदान करता था। लेकिन आज वह सब कुछ लुप्त हो चुका है। आज सिनेमा उद्योग जगत का सबसे बड़ा कारक हो चुका है। आज सिनेमा में उस अभिव्यक्ति को स्थान प्राप्त होता है जिस अभिव्यक्ति के माध्यम से लोगों का आकर्षण और धन का खिंचाव संभव हो सके।

यथार्थ में वर्तमान समय में भारतीय समाज में सिनेमा की अवधारणा को बताते हुए राम प्रकाश द्विवेदी जी अपनी पुस्तक 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और सिनेमा' के माध्यम से कहते हैं कि, "सिनेमा अपने स्वभाव और जन्म से आधुनिक है। उसकी आधुनिकता में वैचारिक प्रतिध्वनियाँ-जैसा कि विभिन्न सुधारवादी, पुनर्जागरणवादी और प्रबोधनवादीं आंदोलन में

मौजूद है परंतु इससे भी अधिक जो महत्वपूर्ण बात है उसका तकनीकी आधार है। आधुनिक तकनीकें हमेशा व्यवसायिकता से घिरी रही हैं। उद्यमता ने इन तकनीकों के विकास की दिशा तय की है। सिनेमाई तकनीक भी इस उद्यमता से प्रभावित रही है और औद्योगिक प्रतिस्पर्धाएँ. तिकड़में और मुनाफा खोर नीतियाँ सिनेमा के निर्माण, विकास, वितरण, प्रदर्शन और कथ्य की आधारशीला रचती रही है।“

जिसे देख कर आज जीवन की गतिशीलता का भान होता है। सिनेमा ने समाज एवं जन सामान्य की जीवन की गतिशीलता को एक नया रूप प्रदान किया है। सिनेमा जनमानस की जीवन शैली का एक अभिन्न अंग है। यह अपनी फिल्मी दुनिया के माध्यम से जीवन को न केवल सार्थकता प्रदान कर रहा है बल्कि अनेक रूपों में भारतीय संस्कृति को पूरे भारत ही नहीं विश्व में प्रचारित और प्रसारित भी कर रहा है। सिनेमा एक ऐसा माध्यम है जो अकेले ही संपूर्ण भारतवर्ष की संस्कृति को एक पर्दे के माध्यम से संपूर्ण विश्व के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है और अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं आदर्शों के प्रतिमान संपूर्ण विश्व तक पहुंचा रहा है। अतः सिनेमा के सकारात्मक पहलुओं के साथ साथ कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं जो पूरे विश्व में एक ही पल में जा रहे हैं। जिन्होंने मनुष्य की वर्तमान मानसिकता को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया है।

भारतीय समाज में सिनेमा और महिलाएं

आज सामाजिक दृष्टि से सिनेमा का स्वरूप अत्यधिक परिवर्तित है। आज समाज में व्याप्त अच्छे बुरे सभी संदर्भों का चित्रांकन सिनेमा के माध्यम से किया जाता है। जिसमें हर प्रकार की गतिविधियां महिलाओं से जुड़कर आगे बढ़ रह हैं। मुख्य रूप से यदि देखा जाए तो सिनेमा में महिलाएं अंग प्रदर्शन का एक माध्यम बन गई हैं। कहीं पर यह स्वेच्छा से है तो कहीं पर निर्देशक कीस्क्रिप्ट के अनुसार कुल मिलाकर भारतीय सिनेमा में महिलाएं सेक्स सिंबल बनकर रह गई है जिसे समाज पर प्रतिकूल प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

यदि सिनेमा के अतीत की बात करें तो पूर्व काल में भारतीय सिनेमा में महिलाओं का अभिनय करना ही वर्जित था। महिलाओं की भूमिका पुरुष अभिनेताओं के द्वारा निभाई जाती थी। पुरुष कलाकार महिला किरदार का निर्वहन किया करते थे। अतः महिलाओं के लिए अभिनय का संघर्ष काफी चुनौती पूर्ण और लंबा रहा है। जिसका प्रमुख कारण महिला कलाकारों का समान वेतन, रूढ़िवादिता, सामाजिक परंपराएं, सड़ी गली प्रथाएं, स्त्री पुरुष भेदभाव, सिनेमा के प्रति निकृष्ट दृष्टिकोण आदि रहे। लेकिन इन सबको मात देते हुए भारतीय सिनेमा में अभिनय करने वाली पहली महिला दुर्गाबाई कामत थी जिन्होंने, अभिनय को एक पेशे के रूप में चुना और एक साहसी कदम उठाते हुए सिनेमा के बंद दरवाजे को महिलाओं के लिए खोला। उन्होंने और उनकी बेटी कमलाबाई ने 1913 में दादा साहेब द्वारा निर्मित ‘मोहिनी भस्मासुर’ पहली फिल्म का अभिनय किया था। जिसमें दुर्गाबाई कामत ने देवी पार्वती का और उनकी बेटी ने मोहिनी का किरदार निभाया था। यह फिल्म भारतीय सिनेमा जगत की एक ऐतिहासिक फिल्म थी जिसने इतिहास के साथ-साथ सिनेमा जगत में महिलाओं के कदम रखने का इतिहास रचा। मां बेटी की इस जोड़ी ने आने वाली सिनेमा की राह में महिलाओं को रास्ता प्रदान किया।

प्रारम्भिक काल भारतीय समाज की विभिन्न परंपराओं के कारण सिनेमा के दृष्टिकोण से महिलाओं के लिए अत्यधिक संघर्ष पूर्ण था। जहाँ पर सिनेमा में अभिनय करना महिलाओं के लिए अच्छा नहीं माना जाता था। लेकिन युग परिवर्तन के साथ साथ समाज की मान्यताएँ बदलने लगी और सिनेमा ने समाज में सबसे बड़े उद्योग जगत के रूप में अपना स्थान बना लिया। आज उसी समाज के विभिन्न लोग सिनेमा में अपना करियर बनाना चाहते हैं और महिलाओं की दृष्टि से देखा जाए तो अनेक महिलाएं सिनेमा को अपनी इच्छा से एक पेशे के रूप में स्वीकार करती है। इस रूप में सिनेमा जगत में महिला के विभिन्न स्वरूप देखने के लिए मिलते हैं लेकिन सबसे अधिक छवि महिला की अंग प्रदर्शन के रूप में देखी जाती है जो पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित दिखाई देती है।

सिनेमाई जगत और महिलाओं की छवि

वर्तमान समय में किसी भी फिल्म को देखें तो पता चलता है कि उनमें अभिनय से अधिक महिलाएँ अपने शरीर का दिखावा करती हैं और अवसाद पूर्ण यह है कि, इस पर किसी को एतराज नही होता। मुंह से कुछ लोग शोर मचाते हैं। लेकिन अन्दर से सब उसी नग्नता को पसंद करते है। पूरी दुनिया में आज ग्लोबलाइजेशन के कारण सभी का रहना-सहना एक जैसा हो गया है। भारत में तो पश्चिमी सभ्यता का पहनावा कॉपी हो रहा है। भारतीय सिनेमा भी इस से बच नहीं पाया है। फिल्मों में महिलाओं की छवि और शरीर के साथ भडकीले कपडों का भी ध्यान रखा जाता है। आज सिनेमा छोटे-छोटे कपडे, बदन दिखाने वाले पहनावे से सिनेमा की पहचान बन रही है। महिलाओं को समाज में देवी कहा जाता है लेकिन सिनेमा और बाजारवाद के मकडजाल ने महिलाओं को आज दैहिक बना दिया है।

टी.वी. सिनेमा में महिलाओं के देह-प्रदर्शन पर भी महिलाओं को ही दोषी ठहराया जाता है। इस सब में बड़ा कारक बाजारवाद की रणनीति को बताया जाता है। क्योंकि सभी को यह बात लगने लगी है कि सिनेमा महिला शरीर को बाजार के अनुसार ढालता हैं। इस बात को सार्थकता देने के लिए राजकिशोर जी की अश्लीलता का हमला पुस्तक को पढने पर यह बात साफ होती है कि “फिल्म, टेलीविजन, विज्ञापन आदि में जब भी स्त्री अथवा पुरुष की देह का इस्तेमाल दर्शकों पाठकों को लुभाने, उत्तेजित करने और इस प्रकार वस्तु विशेष की माँग पैदा करने के लिए होता है तो वह प्रस्तुत अश्लील बनती है, क्योंकि लोकप्रियता माँग की वृद्धि से जुड़ा बाजार मूल्य है। देह की सहज गति से अश्लीलता नहीं होती। उसमे ग्रेस अथवा प्रसाद का गुण होता हैं। किंतु जब देह को विशेष प्रयोजन के लिए प्रदर्शित किया जाता है, तो ग्रीस का विलोप हो जाता है।"

आज सिनेमा संचार के सशक्त माध्यम के रूप में सामने प्रस्तुत है। इस बात से कोई दोराय नही कि संचार माध्यमों के लाभ बहुत है। नैतिक गुणों को भी प्रभावित कर रहा है। सिनेमा में जब भी महिलाओं की बात आती हैं तो सिनेमा में हमें उनके दो पक्ष दिखाई देते है। जिसमें बाजारवादी एवं दैहिक स्वरूप दिखाई देता है। आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में महिलाओं को खरीदार और महिलाओं को ही प्रोडक्ट बना दिया गया है और चौकाने वाली बात यह है कि महिलाओं को पता नहीं चल पाता कि वे कब वस्तु के समान बिक गई हैं।

यथार्थ में देखा जाय तो सुधीश पचौरी की पुस्तक ‘स्त्री देह के विमर्श’ के शब्द सही नजर आते हैं कि , “फिल्में जो पहले कहानी कहती थीं अब ‘दृश्य’ कहती हैं। कहानी से ज्यादा दृश्य-संयोजना प्रभावशाली बनाई जाती हैं। एक्शन-दृश्य हो या नृत्य-दृश्य, दोनों में कई-कई कैमरे कई तरह से दृश्य-संरचनाएँ देते हैं। कैमरे की भूमिका के इस नए दौर में स्त्री देह अपने-आप में एक सम्पूर्ण दृश्य बन जाती है। न्यूज-फोटोग्राफी ने बहुत पहले सिद्ध कर दिया था कि कैमरे का अन्तिम लक्ष्य और अन्तिम सार्थकता स्त्री देह को खोजना है।"

इसी प्रकार अन्ततः समय के साथ बदलते मूल्यों को देखते हुए ‘अश्लीलता का हमला’ पुस्तक में राजकिशोर जी कहते हैं कि, “फिल्मों में औरत का रूपायन कुछ खास तरह के आर्थिक एवं राजनीतिक सरोकारों एवं आधारों को उभारता है। मसलन 1910-30 के बीच में फिल्मों में हीरों को स्थापित करने के लिए औरत को अमुख भूमिकाएँ दी गई। कलांतर में उसकी समर्पणकारी छवि उभारी गई। 1950 के बाद से उसकी घरेलू नौकरी की छवि उभारी गई। 1960 एवं 70 के दौर में नारीवाद के प्रभाव वश परंपरागत नारी की छवि को अस्वीकार किया गया। यह ऐसी औरत थी, जो संवेदनात्मक तौर पर विखंडित थी, अलगाव महसूस करती थी, अतृप्त थी।“

वर्तमान परिदृश्य

वर्तमान परिदृश्य सिनेमाजगत की दुनिया में बिल्कुल फर्क है अर्थात आज के संदर्भ में जहाँ एक ओर औद्योगिकीकरण के कारण सिनेमा जगत विशेष आकर्षण का कारक है। वहीं आज सिनेमा में उन्हीं फिल्मों को आदर और सम्मान के साथ देखा जाता है जो हमारे इतिहास, पुराण, संस्कृति और सामाजिक मान्यताओं को पहचान देने में सक्षम है। आज देश की जनता अपने प्रत्येक कार्य के लिए जागरूक है। देश की महिला अपने व्यक्तित्व को एक नया रूप दे रही है। वह अपने अभिनय के द्वारा समाज में महिला सशक्तिकरण की ओर उन्मुख हुई है। समाज में व्याप्त रूढ़िवादिताओं, परंपराओं, अशिक्षा, बेरोजगारी, भेदभाव आदि को दूर करने के लिये उसने प्रत्येक स्तर पर अहम भूमिका निभाना प्रारंभ कर दिया है। आज सिनेमा जगत की मानसिकता को पहचानकर उसके अनुकूल अपने विषयों का फ़िल्मांकन कर रहा है। जिसमें नारी के उत्कृष्ट स्वरूप को उभारने के मानदंड बदले हैं। आज सिनेमा जगत में महिला मुख्य भूमिका के रूप में सामने आई है। जो कभी पुरुष के आश्रित रहकर अपने अभिनय को सहयोग के रूप में प्रस्तुत करती थी आज वही स्वतंत्र रूप से अभिनय में उतरी है। आज की महिला अदाकारा फिल्मों के द्वारा हमारे इतिहास के पृष्ठों पर अंकित उन महिलाओं की भूमिका का निर्वहन कर रही हैं जिन्होंने समाज के सामने अपने राष्ट्र और समाज के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया था।

आज दूरदर्शन मात्र अंग प्रदर्शन का माध्यम नहीं है वरन वह नारी सशक्तिकरण का एक बहुत बड़ा आदर्श बन चुका है। जिसे ध्यान में रखते हुए नीरा देसाई तथा उषा ठक्कर अपनी पुस्तक भारतीय समाज में महिला इसके माध्यम से कहती है कि, “दूरदर्शन का प्राथमिक

लक्ष्य शिक्षा के माध्यम से विकास करना, विभिन्न समाजों एवं समुदायों, क्षेत्रों और राज्यों के बीच में आपसी समझदारी तथा सहानुभूति पैदा करके एक राष्ट्र के रुप में संगठित करना इनकी जीवन-पद्धति की विशिष्टताओं, संस्कृतियों, रीति-रिवाजों तथा परंपराओं की सुरक्षा करना, उन्हे मजबूत करना एवं समृद्ध करना है, जबकि द्वितीय लक्ष्य है 'मनोरंजन के लिए मनोरंजन' करना तथा आम प्रदर्शन के कार्यक्रमों का प्रसारण। "

निष्कर्ष

सार रूप में कह सकते हैं कि, सिनेमा में महिलाओं की खूबसूरती पर विशेष ध्यान दिया जाता है। क्योंकि फिल्में समाज में संदेश देने का कार्य करती है। लेकिन ऐसा लगता है मानों यह केवल एक भ्रम है। विदेशों में साँवलें रंग की महिलाएँ या फिर कहें सुंदर न दिखने वाली महिलाओं को भी ज्यादा पसंद किया जाता है। बाजार यहां मॉडलिंग से जुडी महिलाओं को ज्यादा तवज्जो देता है। क्योंकि सिनेमा में टी.वी. और विज्ञापन एक साथ मिलकर बाजारवादी संस्कृति तैयार करते है तथा महिलाएँ अपने अभिनय के साथ बाजार में उपभोक्ता की भाँति बिकने और बेचने को तैयार रहती है। यही मुख्य कारण है कि सिनेमा में महिलाएँ वस्तु की तरह इस्तेमाल की जाती है।

लेकिन वर्तमान संदर्भ इससे बिल्कुल भिन्न हैं आज महिला सिनेमा में न केवल अपने व्यक्तित्व को बनाकर एक नवीन पहचान हासिल कर रही है बल्कि समाज को दिशा और दशा प्रदान करने में भी अहम भूमिका का निर्वहन कर रही है।

REFERENCES

1. द्विवेदी, राम प्रकाश, इलैक्ट्रानिक मीडिया और सिनेमा, प्रासंगिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण-2013.

2. देसाई, नीरा/ठक्कर, ऊषा, भारतीय समाज में महिलाएँ, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, प्रथम संस्करण-2009.

3. सागर, शैलेन्द्र गुप्त, रजनी, आजाद औरत कितनी आजाद, सामायिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2008.

4. अरोड़ा, डॉ. हरीश, जनसंचार के माध्यम, युवा साहित्य चेतना मण्डल, प्रथम संस्करण-2007.

5. सिंह, एम. के., भारतीय महिलाएँ-बदलते परिप्रेक्ष्य, साहित्य संचय, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2002.

6. पचौरी, सुधीश, स्त्री देह के विमर्श, आत्माराम एंड संस, प्रथम संस्करण-2000, दिल्ली।

7. राजकिशोर, अश्लीलता का हमला, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1998.

8. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, जनमाध्यम और मास कल्चर, सारांश पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण-1996.